वैश्विक वित्तीय संकट और भारतीय अर्थव्यवस्था *

दीपक मोहंती

मैं बैंक ऑफ अमरीका को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मुझे आपके सामने बोलने का अवसर प्रदान किया। आप जानते ही होंगे कि देशी वृद्धि के मजबूत प्रेरकों के बावजूद भारत भी वैश्विक संकट से प्रभावित हुआ था। इससे यह मामला उभरा कि क्या भारत जितना माना जाता है उससे अधिक वैश्विकृत है। संकटोत्तर अवधि में, भारत में तेज वृद्धि हुई है जबकि अनेक उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि मंद रही है। वस्तुत:, भारत में चिंता सुधार प्रबंधन से हटकर अब मुद्रास्फीति प्रबंधन पर आ गई है क्योंकि वृद्धि अपने संकटपूर्व के रूप में आ गई है। इस पृष्ठभूमि में, मैं भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव की चर्चा करते हुए नीतिगत प्रतिसाद , विशेष रूप से मौद्रिक नीतिगत प्रतिसाद, पर प्रकाश डालना चाहूंगा और भारतीय अर्थव्यवस्था की संभावना दर्शाते हुए समापन करूंगा।

वैश्विक वित्तीय संकट का प्रभाव

हाल के वैश्विक संकट की शुरुआत तक वैश्विक अर्थव्यवस्था ने लगातार वृद्धि का समय देखा जिसमें कुछ घट-बढ़, कम मुद्रास्फीति, एक विशेष घटना जो 'ग्रेट मॉडरेशन' के नाम से अधिक लोकप्रिय हुई, की स्थिति थी। समष्टि-आर्थिक स्थिरता की यह दीर्घ अवधि का कारण प्रभावी रूप से कार्यरत बाजार और वैश्विकरण के लाभ था। किंतु, संपन्नता के इन समग्र चिह्नों के भीतर जो बात छिपी हुई थी वह थी अति जटिल वित्तीय प्रणाली और उससे जुड़ी प्रणालीगत जोखिम। इसके अलावा, देशों में बचत और निवेश तथा उत्पादन और उपभोग के बीच बेमेल के संदर्भ में विश्व अर्थव्यवस्था में कुछ ढांचागत असंतुलन भी उभरे थे जो कुछ भागों में चालू खाते के घाटों में वृद्धि से दिखे जो अन्य में

* दीपक मोहंती, कार्यपालक निदेशक, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाशिंगटन डीसी में 10 अक्तूबर 2010 को जीईएम निवेशक सम्मेलन में दिया गया भाषण। श्री भूपाल सिंह और श्री बिनोद बी. भोई द्वारा दी गई सहायता के लिए हम उनके आभारी हैं।

अधिशेष, विनिमय दरों में बेमेल और आस्तियों में तेजी से प्रकट हुए। ये घटनाएं कभी न कभी सामने आनी ही थी और जब इनके सामने आने की प्रक्रिया शुरू हुई तो उन्होंने 1930 के दशक की ''महामंदी'' के बाद के सर्वाधिक भयानक वैश्विक वित्तीय संकट का रूप ले लिया।

इस संकट ने दिखाया कि जहां बढ़ते वैश्विकरण और व्यापार एकीकरण से उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) को व्यापक आर्थिक और वित्तीय लाभ पहुंचाया है, वहीं इससे कुछ ऐसे माध्यम भी बन गए हैं जिनसे उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक कार्यों की मंदी ईएमई तक पहुंच सकती है। संकट के प्रारंभिक चरण में, ऐसा प्रतीत हुआ कि पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार से प्राप्त सुरक्षा, नीतिगत ढांचे में सुधार और सामान्य रूप से मजबूत बैंकिंग क्षेत्र और कंपनी तुलनपत्रों के आधार पर ईएमई वैश्विक वित्तीय गिरावट का मुकाबला करने के लिए अच्छी स्थिति में थे। किंतु, सितंबर 2008 में लेमन ब्रदर्स की विफलता के बाद ईएमई की इस संकट से बचने की कोई आशा नहीं बची जिससे वैश्विक डिलिवरेजिंग प्रभावित हो गई और जोखिम से बचने की प्रवृत्ति बढ़ गई। अंततः, ईएमई भी वैश्विक वित्तीय गिरावट से उत्पन्न समष्टिआर्थिक उथल-पुथल के प्रसार से प्रभावित हो गईं। ईएमई वैश्विक व्यापार में संकुचन, विशेष रूप से 2008 की दूसरी छमाही के दौरान, और पूंजी प्रवाह के प्रतिगमन, जिससे बाह्य वित्तीयन की स्थिति कड़ी हो गई थी, से प्रभावित हुई थीं। अंत में, वित्तीय संकट वास्तविक अर्थव्यवस्था तक पहुंच जाने से ईएमई में भी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वैश्विक संकट उभरने तक, भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च वृद्धि के चरण में थी जो देशी मांग से प्रेरित थी - बढ़ते देशी निवेश का वित्तपोषण मुख्यतः देशी बचतों और उपभोग मांग की निरंतरता से हो रहा था। वस्तुतः, उपभोग और बचत में अच्छा संतुलन था। सेवा क्षेत्र, जो मुख्य रूप से देशी मांग से प्रेरित था, ने वृद्धि में स्थिरता लाने में मदद की। इसी के अनुरूप, मुद्रास्फीति भी सामान्यतः कम और स्थिर थी। भारत में समष्टिआर्थिक निष्पादन में इस समग्र सुधार का कारण वित्तीय क्षेत्र के सुविचारित सुधार थे जिन्होंने वित्तीय मध्यस्थता की प्रभावी प्रणाली को जन्म दिया था, हालांकि यह बैंक-आधारित; नियम-आधारित राजकोषीय नीति जिसने निजी बचत का भार कम किया; और अग्रमुखी मौद्रिक नीति थी जिसने वृद्धि और मुद्रास्फीति के बीच अल्पावधि ट्रेड ऑफ को लगातार संतुलित किया। इसके अलावा, सामान्य रूप से बाजार-प्रेरित विनिमय दर व्यवस्था के साथ अर्थव्यवस्था के व्यापार और पूंजी प्रवाहों की ओर चरणबद्ध उदारीकरण ने वृद्धि की प्रक्रिया की सहायता में बाह्य मांग की भूमिका बढ़ा दी और साथ ही अर्थव्यवस्था को वैश्विकरण की शक्तियों के प्रति खुला भी कर दिया। इस प्रक्रिया में, भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ अधिकाधिक जुड़ता गया और वित्तीय स्थिरता बनाए रखना सार्वजनिक नीति के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो गया। वस्तुतः, भारत में यह वर्तमान संकट से पहले ही मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण लक्ष्य बन गया। यह बात प्रति-चक्रीय मौद्रिक नीति और समष्टि-विवेकसम्मत वित्तीय विनियमों से स्पष्ट हो जाता है जो कि इस संकट से कुछ ही पहले उच्च-वृद्धि के चरण के दौरान प्रचलित थे।

प्रारंभ में भारत वैश्विक संकट से बचा हुआ था किंतु बाद में वह सभी माध्यमों - व्यापार, वित्त और अपेक्षा माध्यम - से इस संकट से काफी प्रभावित हुआ। इससे

यह बात सामने आई कि क्या भारत पारंपरिक व्यापार खुलेपन के संकेतकों के संदर्भ में सोच से अधिक वैश्विकृत है। इसी समय, भारत वह पहला देश था जिसने अनेक उन्नत देशों की तुलना में वैश्विक संकट से बाहर निकलने में तेजी दिखाई। मैं यहां भारतीय अर्थव्यवस्था की कुछ उभरती ढांचागत विशेषताओं का उल्लेख करूंगा।

पहला, देशी मांग के वर्चस्व के बावजूद, भारत में वृद्धि-प्रक्रिया को ठीक करने में व्यापार की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। वैश्विक एकीकरण में तेजी 2000 के दशक में सेवाओं में भारतीय अंतरराष्ट्रीय व्यापार में तेज वृद्धि के माध्यम से आया जिसका कारण सूचना प्रौद्योगिकी में विस्तार था जिसने सेवाओं की सीमापारीय सुपुर्दगी सुगम बनाई थी। 1990 के दशक में शुरू हुए और 2000 के दशक में जारी रहे पूंजी खाते के उदारीकरण ने वित्तीय एकीकरण की प्रक्रिया को और तेजी प्रदान की। इस प्रकार, वित्तीय माध्यम प्रमुख कारक के रूप में उभरा जिसमें सकल पूंजी प्रवाह (अंतर्वाह और बहिर्वाह) 1980 के दशक के जीडीपी के लगभग 5 प्रतिशत के औसत से बढ़कर 2009-10 में लगभग 48 प्रतिशत हो गए। भुगतान संतुलन में सकल चालू और पूंजी खाता प्रवाह 1980 के दशक के जीडीपी के लगभग 22 प्रतिशत से बढ़कर 2009-10 में 100 प्रतिशत से अधिक हो गए। 1990 के दशक से प्राप्त खुलेपन के उच्च स्तर को देखते हुए, यह स्वाभाविक है कि वैश्विक आघातों - वास्तविक और वित्तीय - का व्यापक प्रभाव होगा।

दूसरा, वैश्विक एकीकरण बढ़ने से, भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक कारोबार चक्र से काफी प्रभावित हुई। यह बात भारतीय कारोबार चक्र और वैश्विक कारोबार चक्र के बीच सह-गति के उच्च स्तर से दिखी। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं और भारत के औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आइआइपी) के चक्रीय घटक के बीच सह-संबंध 1970-1992 की पूर्ववर्ती अवधि के 0.12 से बढ़कर 1993-2010 की अवधि के दौरान 0.50 हो गया।

तीसरा, व्यापार चक्र के पारंपरिक माध्यम से वैश्विक आघातों का अंतरण भी बढ़ गया है। निर्यात बढ़ने और प्राथमिक वस्तु निर्यात से विनिर्माण निर्यात की ओर अंतरण होने से भारत के निर्यात और विश्व निर्यात के बीच सह-गति हाल के वर्षों में काफी बढ़ गई है।

चौथा, व्यापार चक्र के अनुकूलन के अलावा, एकीकरण के प्रति वित्तीय माध्यम भी हाल की अवधि में महत्वपूर्ण हो गया है। अमरीकी शेयर मूल्यों का भारतीय शेयर मूल्यों पर महत्वपूर्ण प्रभाव होने के कारण वैश्विक शेयर मूल्यों का देशी शेयर मूल्यों पर काफी प्रभाव पड़ा है।

हाल की अवधि में भारतीय व्यापार और कारोबार चक्र के वैश्विक चक्र के साथ अनुकूलन और वित्तीय एकीकरण में वृद्धि से पता चलता है कि भारत वैश्विक प्रवृत्ति से अलग नहीं रह सकता। इस प्रकार, वैश्विक आर्थिक घटनाओं का प्रभाव अब देशी अर्थव्यवस्था पर अधिक पड़ता है जैसा कि हाल के वैश्विक वित्तीय और आर्थिक संकट के दौरान दिखा। ऐसा कहने के बाद यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि वृद्धि के प्रेरक मुख्य रूप से देशी ही थे। 2003-2008 की हाल की उच्च वृद्धि के चरण के दौरान, देशी मांग कुल मांग के 100 प्रतिशत से अधिक थी जो निजी उपभोग और निवेश से प्रेरित थी (सारणी 1 और 2)।

सारणी 1: कुल व्यय के घटकों की वृद्धि दर

(प्रतिशत)

मद/वर्ष	औसत		संकट अवधि	
	2000-01 से 2009-10	2003-04 से 2007-08	2008-09	2009-10
निजी अंतिम उपभोग व्यय	6.2	7.6	6.8	4.3
सरकारी अंतिम उपभोग व्यय	5.8	5.6	16.7	10.5
समग्र पूंजी निर्माण	9.8	16.8	-1.7	7.1
निर्यात	14.6	17.9	19.3	-6.7
आयात	13.6	20.1	23.0	-7.3
बाजार मूल्य पर जीडीपी	7.1	9.0	5.1	7.7

स्रोत: केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, भारत सरकार।

2008-09 में अर्थव्यवस्था मंद होने पर जीडीपी वृद्धि 2003-08 के दौरान के 8.9 प्रतिशत के औसत से कम होकर 6.7 प्रतिशत रह गई। जीडीपी वृद्धि 2008-09 की दूसरी छमाही के लगभग 6.0 प्रतिशत के कम स्तर से सुधरकर 2009-10 की पहली छमाही में 7.3 प्रतिशत हो गई और सुधार प्रक्रिया 2009-10 की दूसरी छमाही में मजबूत हो गई। रिज़र्व के अनुमान के अनुसार 2010-11 में जीडीपी 8.5 प्रतिशत बढ़ेगी जो कि हाल के वर्षों में देखी गई प्रवृत्ति के करीब है। इस प्रकार, वैश्विक वित्तीय संकट ने भारत की वृद्धि गति को 2008-09 के मध्य और 2009-10 के बीच एक वर्ष बाधित किया। इस अवधि के दौरान भी प्राप्त हुई न्यूनतम तिमाही वृद्धि 5.8 प्रतिशत थी। भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्विक संकट के मध्यम प्रभाव से पता चलता है कि वृद्धि के प्रेरक मुख्य रूप से देशी ही हैं।

नीतिगत प्रतिसाद

अन्यत्र जैसा ही, राजकोषीय और मौद्रिक नीति ने संकट को प्रतिसाद दिया। राजकोषीय नीति प्रतिसाद का रूप 2004-05 से लागू नियम-आधारित राजकोषीय समेकन

सारणी 2: जीडीपी की व्यय संरचना

(स्थिर बाजार मूल्यों पर जीडीपी का प्रतिशत हिस्सा)

मद/वर्ष	औसत		संकट अवधि	
	2000-01 से 2009-10	2003-04 से 2007-08	2008-09	2009-10
I. देशी (i+ii+iii)	**103.1**	**103.7**	**106.5**	**104.8**
जिसमें से				
(i) निजी अंतिम उपभोग व्यय	60.7	59.5	59.5	57.6
(ii) सरकारी अंतिम उपभोग व्यय	11.3	10.7	11.5	11.8
(iii) समग्र पूंजी निर्माण	31.1	33.5	35.6	35.4
II. बाह्य (iv-v)	-2.4	-2.6	-6.1	-5.1
(iv) निर्यात	18.5	19.5	24.5	21.3
(v) आयात	20.9	22.1	30.7	26.4
अंतर	-0.7	-1.2	-0.4	0.3

स्रोत: केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, भारत सरकार।

प्रक्रिया से अलग जाना था। परिणामस्वरूप, केंद्र सरकार का सकल राजकोषीय घाटा 2007-08 के जीडीपी के 2.6 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में जीडीपी के 6.0 प्रतिशत और आगे2009-10 में जीडीपी के 6.7 प्रतिशत हो गया। राज्य सरकारों का राजकोषीय घाटा भी बढ़ा। राज्यों और केंद्र का संयुक्त राजकोषीय घाटा 2007-08 के 4 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 8 प्रतिशत से अधिक और 2009-10 में 10 प्रतिशत हो गया (सारणी 3)।

राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों में कर कटौती और व्यय-वृद्धि दोनों शामिल थे। किंतु, इस बात को पहचानना महत्वपूर्ण है कि कई अन्य देशों से भिन्न,भारत में पूरा राजकोषीय प्रोत्साहन वित्तीय क्षेत्र को सहायता करने की तुलना में कुल मांग में कमी पर ध्यान देने में अधिक था। मैं मौद्रिक नीतिगत प्रतिसादों के ब्योरे पर अधिक फोकस करूंगा।

मौद्रिक नीति

वैश्विक वित्तीय संकट के बाद, देशी समष्टि आर्थिक और नीतिगत माहौल 2008-09 की दूसरी छमाही से तीन विशेष चरणों से गुजरा है। हर चरण ने रिज़र्व बैंक द्वारा संचालित मौद्रिक नीति के सामने अलग किंतु महत्वपूर्ण चुनौती रखी।

पहला चरण: संकट प्रबंधन (अक्तूबर 2008 से अप्रैल 2009)

पहले चरण के दौरान, प्रतिकूल वैश्विक घटनाओं का देशी वित्तीय प्रणाली और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव सीमित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने तेजी से समग्र उपाय शुरू किए। अधिकांश केंद्रीय बैंकों जैसे ही, रिज़र्व बैंक ने भी देशी और विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ाने के लिए अनेक पारंपरिक और अपारंपरिक उपाय किए और नीतिगत दरोक्ष को तेजी से कम किया। अक्तूबर 2008 से अप्रैल 2009 के बीच सात माहों की अवधि में, अपूर्व घटनाएं हुईं। उदाहरण के लिए: (i) रिपो दर 425 आधार अंक कम करके 4.75 प्रतिशत किया गया, (ii) रिज़र्व रिपो दर 275 आधार अंक कम करके 4.25 प्रतिशत किया गया, (iii) नकदी आरक्षित निधि अनुपात (सीआरआर) कुल 400 आधार अंक कम करके 5.0 प्रतिशत किया गया और (iv) वित्तीय प्रणाली को उपलब्ध की गई संभाव्य प्राथमिक चलनिधि 5.6 ट्रिलियन से अधिक या जीडीपी के 10 प्रतिशत से अधिक थी।

चलनिधि प्रबंधन को विनिमय दर प्रबंधन और आंतरिक ऋण प्रबंधन परिचालनों के अनुरूप बनाते हुए, रिज़र्व बैंक ने मूल्य और वित्तीय स्थिरता के लक्ष्य के

सारणी 3: राजकोषीय घाटा

(जीडीपी का प्रतिशत)

	औसत		2007-08	2008-09	2009-10	2010-11 (अनुमानित)
	2000-01 से 2009-10	2003-04 से 2007-08				
	सकल राजकोषीय घाटा					
केंद्र सरकार	4.9	3.6	2.6	6.0	6.7	5.5
राज्य सरकारें	3.2	2.7	1.5	2.4	3.4	2.9
संयुक्त (केंद्र और राज्य)*	7.9	6.3	4.1	8.5	10.0	8.3

*: केंद्र और राज्यों का घाटा उनके संयुक्त से भिन्न हो सकता है क्योंकि केंद्र और राज्यों के बीच अंतर-सरकारी अंतरणों को घटाया गया है।

अनुरूप यह सुनिश्चित किया कि प्रणाली में उपयुक्त चलनिधि बनी रहे। नीतिगत रुझान ने अग्र-दर्शी विचार, विशेष रूप से मुद्रास्फीति के संबंध में किसी जोखिम के अभाव में काफी लंबी प्रतिकूल बाह्य स्थिति की अपेक्षा को स्पष्ट रूप से दर्शाया। जबकि संकट की व्यापकता का स्वरूप वैश्विक था, नीतिगत प्रतिसादों को देशी वृद्धि, स्फीतिकारी और वित्तीय क्षेत्र की स्थिति के अनुरूप बनाया गया।

किंतु, रिज़र्व बैंक और अन्य अनेक उन्नत देशों द्वारा उठाए गए कदमों के बीच कुछ महत्वपूर्ण अंतर था। पहला, चलनिधि आपूर्ति की प्रक्रिया में प्रति-पक्ष बैंक थे; यहां तक कि पारस्परिक निधि, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) और आवास वित्त कंपनियों संबंधी उपाय मुख्य रूप से बैंकों के माध्यम से हुए। दूसरा, संपार्श्विक मानकों में ढील नहीं दी गई जो उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की बंधक प्रतिभूतियों और वाणिज्य पत्रों से भिन्न मुख्य रूप से सरकारी प्रतिभूतियां थीं। तीसरा, व्यापक चलनिधि आपूर्ति के बावजूद, रिज़र्व बैंक के तुलनपत्र ने असामान्य वृद्धि नहीं दर्शाई क्योंकि पहले बाधित चलनिधि जारी की गई थी। चौथा, बहुविध लिखतों की उपलब्धता और विनियोजन ने मौद्रिक और चलनिधि उपायों की बेहतर क्रमिकता सुगम की। अंत में, संकट से पहले प्र-चक्रीय प्रावधानीकरण और प्रति-चक्रीय विनियमों के प्रयोग के अनुभव से वित्तीय स्थिरता बढ़ाने में मदद मिली।

दूसरा चरण: वसूली प्रबंधन (मई 2009 से दिसंबर 2009)

2009-10 की पहली छमाही में दिखे सुधार के अस्थायी चिह्न 2009-10 की दूसरी छमाही में स्थिर हो गए। 2009-10 की पहली छमाही में, आर्थिक गतिनिधियों में कमजोरी और कम मुद्रास्फीति के माहौल ने मौद्रिक नीतिगत प्रोत्साहन जारी रखने की स्थिति निर्माण की। वृद्धि में सुधार संबंधी चिंता इस बात में स्पष्ट हुई कि जीडीपी वृद्धि क्षमता वृद्धि दर से कम बनी रही। 2009-10 की दूसरी छमाही में, निवेश मांग में तेजी आने के बावजूद निजी उपभोग व्यय में वृद्धि मंद बनी रही। वैश्विक सुधार के स्वरूप में लगातार अनिश्चय और मंद देशी निजी मांग के कारण समग्र नीतिगत रुझान वृद्धि लक्ष्य के प्रति संवेदनशील बना रहा।

मुद्रास्फीति के संबंध में, वैश्विक सुधार से पहले वैश्विक पण्य मूल्य बढ़ गए। हेडलाइन डब्ल्यूपीआइ मुद्रास्फीति अगस्त-जून 2009 में नकारात्मक रहने के बाद सितंबर 2009 में न सिर्फ सकारात्मक हो गई बल्कि उसके बाद बढ़ भी गई जो कमजोर मानसून के कारण खाद्य वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि दर्शाती है। उपभोक्ता मूल्य (सीपीआइ) मुद्रास्फीति लगातार दो अंकीय बनी रही। इसके अलावा, कर्ज की मांग मंद रहने के बावजूद, प्रणाली में चलनिधि की अधिकता में स्फीतिकारी अपेक्षा बढ़ाने और आस्ति मूल्य निर्माण बढ़ाने की शक्ति थी। इस प्रकार, देशी स्फीतिकारी दबाव और इसके सामान्य हो जाने की जोखिम को देखते हुए और अर्थव्यवस्था वृद्धि पथ पर आने के स्पष्ट चिह्नों के कारण भारत में निभावी मौद्रिक नीति से उपयुक्त निर्गम की रणनीति पर चर्चा नीतिगत सोच-विचार में सामने आ गई।

इस दौर में, मौद्रिक नीति के सामने यह चुनौती थी कि मूल्य स्थिरता से समझौता किए बिना सुधार प्रक्रिया की मदद की जाए। रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक निभाव

से बाहर निकलने की शुरुआत अक्तूबर 2009 से की। इस प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, संकट के प्रतिसाद के रूप में किए गए अपारंपरिक उपाय वापस लिए गए। बैंकों का सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर), जो उनकी मांग और मीयादी जमाराशि के 25 प्रतिशत से कम करके 24 प्रतिशत किया गया था, उसे पुन: 25 प्रतिशत किया गया। निर्यात कर्ज पुनर्वित्त सुविधा की सीमा, जो बढ़ाकर पात्र बकाया निर्यात कर्ज के 50 प्रतिशत की गई थी, को वापस 15 प्रतिशत के संकट-पूर्व स्तर पर लाया गया। संभाव्य वित्तीय स्थिरता संबंधी चिंताएं दूर करने के लिए वाणिज्यिक भूसंपदा के अग्रिमों के लिए प्रावधानीकरण अपेक्षा 0.4 प्रतिशत से बढ़ाकर 1.0 प्रतिशत की गई।

तीसरा चरण: मुद्रास्फीति प्रबंधन (2010 की शुरुआत से)

जनवरी 2010 तक, देशी वृद्धि के संकेतक सुधार प्रक्रिया मजबूत होने के संकेत दे रहे थे। किंतु, खाद्य मूल्यों में लगातार वृद्धि विनिर्मित उत्पादों तक बढ़ने लगी थी (चार्ट 1)। प्राथमिक पण्यों में मुद्रास्फीति अगस्त 2009 के एक अंकीय से बढ़कर मार्च 2010 तक 22.2 प्रतिशत हो गई।

मुद्रास्फीति प्रबंधन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण चिंता यह है कि अच्छे मानसून के बाद भी प्राथमिक खाद्य मदों के मूल्यों में अधोमुखी कड़ाई है। इसके अलावा, उपभोग समूह में दूध, मांस, कुक्कुट, मछली, साग और फलों जैसी अनाज से भिन्न मदों, जो कि पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, के पक्ष में विविधता आ रही है। खाद्य मुद्रास्फीति का खंडीकरण दर्शाता है कि हाल की अवधि में खाद्य मुद्रास्फीति के मुख्य प्रेरक अनाजेतर हैं (चार्ट 2)।

हेडलाइन मुद्रास्फीति मार्च से जुलाई 2010 के पांच महीनों में लगातार दो अंकीय बनी रहने और मुद्रास्फीति प्रक्रिया अधिक सामान्य हो जाने से, नीति का रुख सुधार-प्रबंधन से हटकर मुद्रास्फीति नियंत्रण और स्फीतिकारी अपेक्षाओं को रोकने की ओर हो गया। तदनुसार, निर्गम का दूसरा चरण फरवरी 2010 में शुरू हुआ। सीआरआर

चार्ट 1: भारत में हेडलाइन मुद्रास्फीति के प्रेरक

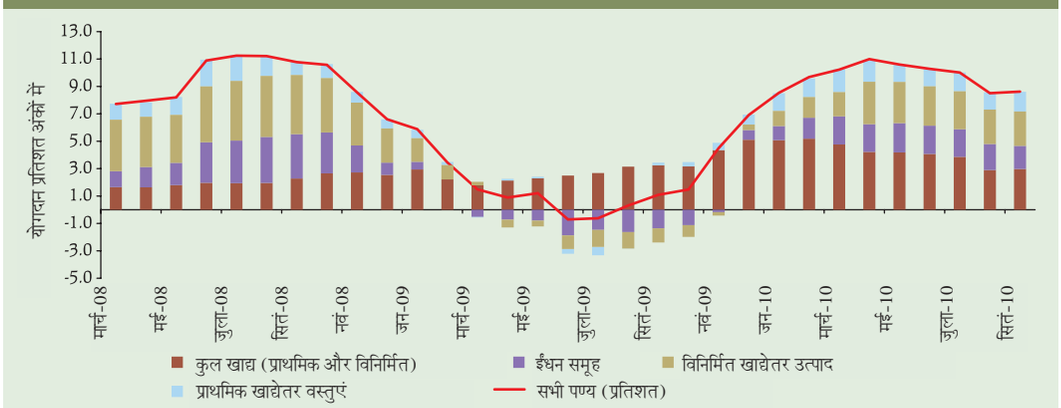

चार्ट 2: भारत में खाद्य मुद्रास्फीति के नए प्रेरक

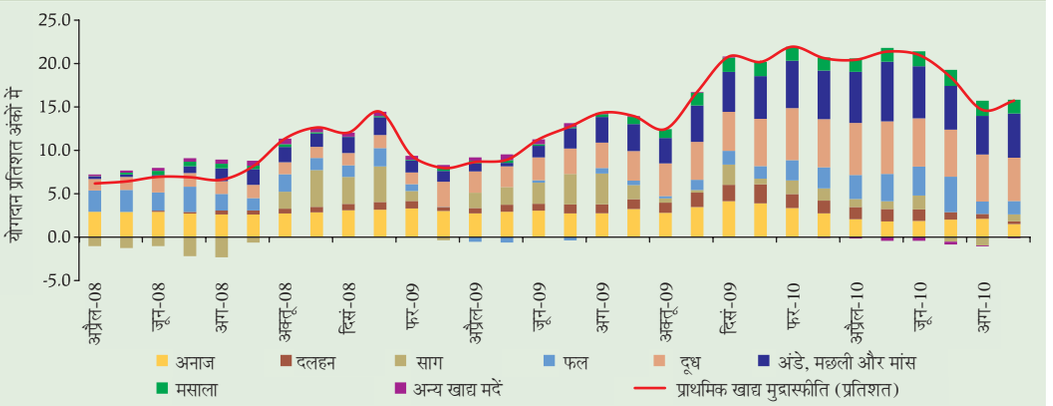

100 आधार अंक बढ़ाया गया ताकि प्रणाली से अतिरिक्त चलनिधि निकाली जा सके। चरणब्द्ध तरीके से नीतिगत रिपो दर 125 आधार अंक बढ़ाया गया और रिवर्स रिपो दर 175 आधार अंक बढ़ाया गया (सारणी 4)।

सारणी 4: वैश्विक वित्तीय संकट के समय से भारत में प्रमुख मौद्रिक नीतिगत उपाय

(प्रतिशत)

लागू होने की तारीख	रिवर्स रिपो दर	रिपो दर	सीआरआर	एसएलआर
1	2	3	4	5
11 अक्तूबर 2008	6.00	9.00	6.50 (-2.50)	25.0
20 अक्तूबर 2008	6.00	8.00 (-1.00)	6.50	25.0
25 अक्तूबर 2008	6.00	8.00	6.00 (-0.50)	25.0
3 नवंबर 2008	6.00	7.50 (-0.50)	6.00	25.0
8 नवंबर 2008	6.00	7.50	5.50 (-0.50)	24.0
8 दिसंबर 2008	5.00 (-1.00)	6.50 (-1.00)	5.50	24.0
5 जनवरी 2009	4.00 (-1.00)	5.50 (-1.00)	5.50	24.0
17 जनवरी 2009	4.00	5.50	5.00 (-0.50)	24.0
4 मार्च 2009	3.50 (-0.50)	5.00 (-0.50)	5.00	24.0
21 अप्रैल 2009	3.25 (-0.25)	4.75 (-0.25)	5.00	24.0
7 नवंबर 2009	3.25	4.75	5.00	25.0
13 फरवरी 2010	3.25	4.75	5.50 (+0.50)	25.0
27 फरवरी 2010	3.25	4.75	5.75 (+0.25)	25.0
19 मार्च 2010	3.50 (+0.25)	5.00 (+0.25)	5.75	25.0
20 अप्रैल 2010	3.75 (+0.25)	5.25 (+0.25)	5.75	25.0
24 अप्रैल 2010	3.75	5.25	6.00 (+0.25)	25.0
2 जुलाई 2010	4.00 (+0.25)	5.50 (+0.25)	6.00	25.0
27 जुलाई 2010	4.50 (+0.50)	5.75 (+0.25)	6.00	25.0
16 सितंबर 2010	5.00(+0.50)	6.00(+0.25)	6.00	25.0

टिप्पणी: 1. रिवर्स रिपो दर चलनिधि निकालना तथा रिपो दर चलनिधि शामिल करना दर्शाते हैं। नकदी आरक्षित निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) बैंकों की निवल मांग और मीयादी देयताओं के प्रतिशत हैं।

2. कोष्ठकों के आंकड़े नीतिगत दरों में प्रतिशत परिवर्तन दर्शाते हैं।

चार्ट 3: नीतिगत दरें और एक दिवसीय मुद्रा बाजार दर

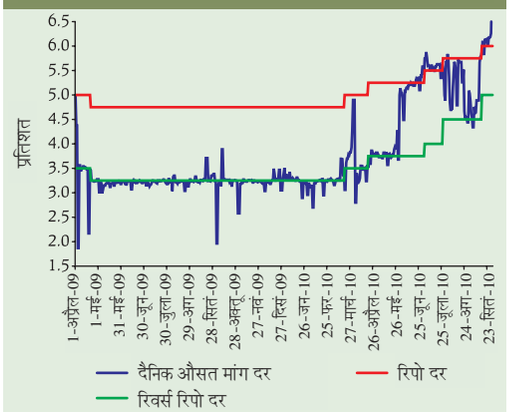

उसी समय, अल्पावधि नीतिगत दरों को प्रभावी बनाने के लिए प्रणाली में चलनिधि को कम-ज्यादा करना आवश्यक था। मुख्य मौद्रिक परिचालन तंत्र, चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) इस प्रकार कार्य करती है कि प्रणालीगत चलनिधि अधिशेष से घाटे की ओर बढ़ने पर, यहां तक की मार्जिन पर, एक दिवसीय मांग मुद्रा दरें रिवर्स रिपो दर और रिपो दर के बीच रहती हैं। इससे मांग दरों को एलएएफ दायरे की सीमा (अर्थात रिपो और रिवर्स रिपो दर के बीच का अंतर)तक घुमने का स्थान मिल जाता है। अत:, मौद्रिक गतिविधि प्रभावी बनाने के लिए एलएएफ दायरा 150 आधार अंकों से कम करके 100 आधार अंक किया गया (चार्ट 3)।

समापन

2009-10 की अंतिम तिमाही में देखे गए व्यापक आधार के मजबूत सुधार के कारण 2010-11 की जीडीपी वृद्धि की संभावना में काफी सुधार हुआ है। वैश्विक सुधार में कमजोरी आने की संभावना लगातार बनी होने के बावजूद, वृद्धि के प्रति देशी जोखिम में काफी कमी आई है। परिणामस्वरूप, रिज़र्व बैंक ने 2010-11 का जीडीपी वृद्धि का अपना अनुमान अप्रैल 2010 के 8 प्रतिशत से बढ़ाकर जुलाई 2010 में 8.5 प्रतिशत कर दिया।

समष्टिआर्थिक प्रबंधन में मुद्रास्फीति अब मुख्य चिंता है, हालांकि अस्थायी डब्ल्यूपीआइ जुलाई 2010 के 10.0 प्रतिशत से कम होकर सितंबर में 8.6 प्रतिशत रह गई जो आपूर्ति स्थिति में सुधार और नीतिगत कार्रवाई का विलंबित असर दर्शाती है। किंतु, चिंता की बात यह है कि खाद्य मुद्रास्फीति दो अंकीय बनी हुई है जो उपभोग मांग में अंतरण दर्शाती है। यदि आपूर्ति प्रतिसाद अनुरूप न हो तो यह जोखिम है कि खाद्य मूल्य मुद्रास्फीति ढांचागर रूप ले सकती है। फिर भी, समग्र मुद्रास्फीति दर बढ़ी हुई प्रतीत होती है। रिज़र्व बैंक का अनुमान है कि हेडलाइन मुद्रास्फीति दर मार्च 2011 तक कम होकर 6 प्रतिशत रह जाएगी। रिज़र्व बैंक के वृद्धि और मुद्रास्फीति के अनुमान 2 नवंबर 2010 को मौद्रिक नीतिगत दूसरी तिमाही की समीक्षा में संशोधित किए जाएंगे।

सारांश के रूप में, मजबूत आधार होने और सब-प्राइम आस्तियों के प्रति प्रत्यक्ष एक्सपोजर न होने के बावजूद, भारत वैश्विक वित्तीय संकट के सभी माध्यमों - व्यापार, वित्तीय और विश्वास माध्यम - से प्रभावित हुआ जो यह दर्शाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्विकरण पारंपरिक संकेतों से भी अधिक हुआ था। वैश्विक संकट के प्रति नीतिगत प्रतिसाद तेज गति के और समयानुकूल थे जो 2008-09 की दूसरी छमाही से प्रारंभ हुए तीन चरणों में पूरे हुए। पहले चरण में, संकट प्रबंधन को नीतिगत प्राथमिकता मिली जिससे रिज़र्व बैंक ने देशी वित्तीय प्रणाली और अर्थव्यवस्था पर वैश्विक गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभाव को सीमित रखने के लिए पारंपरिक और अपारंपरिक उपायों के समग्र दायरे का प्रयोग किया।

मौद्रिक नीति चलनिधि - देशी रुपया और विदेशी मुद्रा चलनिधि दोनों - को बढ़ाने और उसे कम दर पर उपलब्ध कराने पर केंद्रित की गई। इसे मांग में कमी की समस्या से बचने के राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों से सहायता मिली। दूसरे चरण में, मौद्रिक नीति में मूल्य स्थिरता से समझौता किए बिना सुधार प्रक्रिया की सहायता करने पर ध्यान दिया गया। तदनुसार, जहां निभावी नीतिगत रुझान को महत्व देते हुए नीतिगत दरें अपरिवर्तित रखी गईं, वहीं संकट के प्रतिसाद में किए गए अत्यधिक अपारंपरिक उपाय यह थे कि गतिविधियों की सामान्य गति की वापसी हुई। वर्तमान चरण के दौरान, देशी वृद्धि की संभावना बढ़ने से मुद्रास्फीति प्रबंधन को भारी महत्व प्राप्त हुआ और तदनुसार, मौद्रिक नीति की सामान्य प्रक्रिया को गति प्राप्त हुई। इससे आगे, वृद्धि की संभावना अनुकूल बनी हुई है और मुद्रास्फीति कम होने की आशा है। किंतु, मंद वैश्विक अर्थव्यवस्था, वैश्विक पण्य मूल्यों में तेजी, अस्थिर पूंजी प्रवाह और उच्च देशी खाद्य मूल्यों की जोखिम बनी हुई है।